Quest Journals
Journal of Research in Humanities and Social Science
Volume 5 ~ Issue 10 (2017) pp: 82-85
ISSN(Online):2321-9467
www.questjournals.org

Research Paper

जीवन का कर्त्तव्य समय का मूल्य और सदुपयोग

डा. उर्मिला मीणा घूमना
सहआचार्य संस्कृत
महारानी श्री जया महाविद्यालय,
भरतपुर (राज.)

परमपिता परमात्मा की इस विचित्र सृष्टि में मनुष्य शरीर एक अमूल्य एवं विलक्षण वस्तु है। यह उन्नति करने की एक सर्वोत्तम साधन है। इसको प्राप्त करके सर्वोत्तम सिद्धि के लिए सदा सतत चेष्टा करनी चाहिये। इसके लिये सर्वप्रथम आवश्यकता है। ध्येय के निश्चय करने की। जब तक मनुष्य जीवन का कोई ध्येय–उद्देश्य ही नहीं बनाता, तब तक वह वास्तव में मनुष्य कहलाने योग्य ही नहीं, क्योंकि उद्देश्यविहीन जीवन पशु–जीवन से भी निष्कृष्ट है, किन्तु जैसे मनुष्य शरीर सर्वोत्तम है। वैसे इसका उद्देश्य भी सर्वोत्तम ही होना चाहिये सर्वोत्तम वस्तु है, परमात्मा। इसलिये मानव–जीवन का सर्वोत्तम ध्येय है– परमात्मा की प्राप्ति, जिसके लिये भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है–

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।

इस परमात्मा की प्राप्ति के लिये सबसे पहला और प्रधान साधन है। 'जीवन के समय का सदुपयोग।' समय बहुत ही अमूल्य वस्तु है। जगत के लोगों ने पैसों को बडी वस्तु समझा है, किन्तु समय को बहुत ही कम मनुष्यों ने मूल्य दिया है, पर वस्तुतः विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि समय बहुत ही मूल्यावान् वस्तु है। विचार कीजिये–अपना समय देकर हम पैसे प्राप्त कर सकते हैं; पर पैसे देककर समय नहीं खरीद सकते। अन्तकाल में जब आयु शेष हो जाती है, तब लाखों रुपये देने पर भी एक घंटे समय की कौन कहे एक मिनट भी नहीं मिल सकता, समय से विद्या प्राप्त की जा सकती है, पर विद्या से समय नहीं मिलता। समय पाकर एक मनुष्य से कई मनुष्य बन जाते हैं, अर्थात् बहुत बडा परिवार बढ़ सकता है; पर समस्त परिवार मिलकर भी मनुष्य की आयु नहीं बढ़ा सकता। समय खर्च करने से संसार में बडी भारी प्रसिद्धि हो जाती है, पर उस प्रसिद्धि से जीवन नहीं बढ सकता। समय लगाकर हम जमीन–जायदाद, हाथी–घोडे, धन–मकान आदि अनेक चल–अचल सामग्री एकत्र कर सकते हैं। पर उन सम्पूर्ण सामग्रियों से भी आयु–वृद्धि नहीं हो सकती। यहाँ एक बात और ध्यान देने की है कि रूपये, विद्या, परिवार–प्रसिद्धि, अनेक सामग्री आदि के रहते हुए भी जीवन का समय न रहने से मनुष्य मर जाता है, किन्तु उम्र रहने पर जो सर्वस्व नष्ट हो जाने पर भी मनुष्य जीवित रह सकता है। इसलिये जीवन के आधारभूत इस समय को बडी ही सावधानी के साथ सदुपयोग में लाना चाहिये, नही तो यह बात–ही–बात में बीत जायेगा, क्योंकि यह तो प्रतिक्षण बडी तेजी के साथ नष्ट हुआ जा रहा है। रूपये आदि तो जब हम खर्च करते हैं। तभी खर्च होते हैं, नहीं तो तिजोरी में पडे रहते हैं, पर समय तो अपने–आप ही खर्च होता चला जा रहा है, उसका खर्च होना कभी बन्द होता ही नहीं। अन्य वस्तुएँ तो नष्ट होने पर भी पुनः उत्पन्न की जा सकती हैं। पर गया हुआ समय किसी प्रकार भी लौटाया नहीं जा सकता। अतः हमें उचित है कि बचे हुए समय के एक क्षण को भी निरर्थक नष्ट न होने देकर अति–कृपण के धन की तरह उसकी कीमत समझकर उसे ऊँचे–से–ऊँचे काम में लगायें। प्रथम श्रेणी का सर्वोत्तम काम है–पारमार्थिक पूँजी का संग्रह। दूसरी श्रेणी का काम है–सांसारिक निर्वाह के लिये न्यायपूर्वक द्रव्योपार्जन। इनमें से दूसरी श्रेणी के काम में लगाया हुआ समय भी भाव के सर्वथा निष्काम होने पर पहली श्रेणी में ही गिना जा सकता है।

इसके लिये हमें समय का विभाग कर लेना चाहिए, जैसा कि भगवान ने कहा है–

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।[1]

।।गीता 6/17)

'दुःखों का नाश करने वाला योग तो यथायोग्य आहार–विहार करने वाले का, कर्मों में यथायोग्य चेष्टा करने वाले का और यथायोग्य सोने तथा जागने वाले का ही सिद्ध होता है।'

इस श्लोक में अवश्य करने की चार बातें बतलायी गयी हैं, 1. युक्ताहारविहार, 2. शरीर–निर्वाहार्थ उचित चेष्टा 3. यथायोग्य सोना और 4. यथायोग्य जागना। पहले विभाग में शरीर को सशक्त और स्वस्थ रखने के लिये शौच, स्नान, घूमना, व्यायाम, खान–पान, औषध–सेवन आदि चेष्टाएँ सम्मिलित है। दूसरा विभाग है। जीविका पैदा करने के लिये,

जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि के लिये अपने–अपने वर्ण–धर्म के अनुसार न्याययुक्त कर्त्तव्यकर्मों का पालन करना बतलाया गया है। तीसरा विभाग है– शयन करने के लिये, इसमें कोई विशेष उल्लेखनीय बात नहीं है। अब चौथा प्रमुख विभाग है– जागने का। इस श्लोक में ''अवबोध'' का अर्थ तो रात्रि में छः घण्टे सोकर अन्य समय में जगते रहना और उनमें प्रातः–सायं दिनभर में छः घण्टे साधन करना है। परनतु ''अवबोध'' से यहाँ वस्तुतः मोहनिद्रा से जगकर परमात्मा की प्राप्ति करने की बात को ही प्रधान समझना चाहिए। श्रीशंकराचार्य जी ने कहा है– 'जागर्ति को वा सदद्विवेकी।'

अब इस पर विचार कीजिये हमारे पास समय है चौबीस घंटे और काम है चार। तब समान विभाग करने से एक–एक कार्य के लिये छः–छः घण्टे मिलते हैं। उपर्युक्त चार कामों में आहार–विहार और शयन– ये दो तो खर्च के काम है। और व्यापार तथा अवबोध (साधन करना)– ये दो उपार्जन के काम हैं। इस प्रकार खर्च और उपार्जन के लिये क्रमशः बारह–बारह घण्टे मिलते हैं। इनमें लगाने के लिये हमारे पास पूँजी है। दो–एक समय और दूसरा द्रव्य; इनमें से द्रव्य तो लौकिक पूँजी है। और समय अलौकिक पूँजी है। आहार–विहार में तो द्रव्य का व्यय होता है। और शयन में समय का। इसी प्रकार जीविका और अवबोध (साधन करने) में केवल समय का व्यय होता है। किन्तु अलौकिक पूँजीरूप समय का तो चारों में ही व्यय होता है। अब हमें सोचना चाहिए कि अलौकिक पूँजी को खर्च करके तो अलौकिक लाभ ही प्राप्त करने योग्य है। साधारणतया आहार, विहार और जीविका के कार्य से हम लौकिक लाभ ही उठाते हैं। तथा शयन में तो श्रम दूर करने के सिवाय कोई विशेष लाभ की बात दीखती ही नहीं, परन्तु ये ही सब कर्म यदि निष्कामभाव से किये जाये ंतो सर्वोत्तम अलौकिक लाभ प्रदान कर सकते हैं।

यहाँ एक बात और समझने की है कि यदि साधन भी सकाम–भाव से किया जाता है। तो वह समय भी लौकिक लाभ ही देने वाला होता है और निष्कामभाव से करने पर वही साधन अलौकिक लाभ देने वाला हो जाता है। अतः हमें सभी काम निष्कामभाव से ही करने चाहिए।

अभिप्राय यह है कि हमें अवबोध–मोहनिद्रा से जगकर परमात्मा की ओर ही अपनी सब क्रियाओं का लक्ष्य बना लेना चाहिए। इसे हमको जो अब तक केवल सांसारिक–लौकिक लाभ ही हो रहा था, उसकी जगह अलौकिक लाभ होने लगेगा और इस प्रकार हम लौकिक पूँजी को भी अलौकिक पूँजी बना सकेंगे।

अभिप्राय यह है कि हमें अवबोध–मोहनिद्रा से जगकर परमात्मा की ओर ही अपनी सब क्रियाओं का लक्ष्य बना लेना चाहिए इसमें हम को तो अब तक केवल सांसारिक–लौकिक लाभ ही हो रहा था, उसकी जगह अलौकिक लाभ होने लगेगा और इस प्रकार हम लौकिक पूँजी को भी अलौकिक पूँजी बना सकेगें।

भाव यह है कि शौच–स्नान आदि में यदि पाँच घण्टे से ही काम चल जाय तो सात घण्टे निष्कामभावपूर्वक द्रव्योपार्जनादि कर्मों में लगावे और यदि शौच–स्नानादि में चार घण्टे से ही काम चल जाय तो आठ घण्टे निष्काम भाव से द्रव्योपार्जन में लगावे। इसी तरह यदि, सोने में यदि पाँच धण्टे से ही काम चल जाय तो सात घण्टे भजन–ध्यान, जप, स्वाध्याय–सत्सङ्ग पूजा–पाठ आदि पारमार्थिक साधन में लगाने चाहिए और यदि शयन में चार घण्टे से ही काम निकल जाय तो आठ घण्टे भजन–ध्यानादि में अवश्य लगाने चाहिए। तात्पर्य यह है कि आय अधिक और व्यय कम होना चाहिए अर्थात् हो सके, जितना समय निद्रा से निकालकर तो लगाया जाय भजन में और खान–पानादि से समय निकालकर लगाया जाय निष्कामभावपूर्वक आवश्यक काम–काज में।

क्योंकि काम–काज करते समय भी यदि निष्कामभाव रखकर भगवदाज्ञा से न्यायपूर्वक कर्त्तव्यपालन किया जाये तो वह समय भी भजन में ही लगा समझा जा सकता है। तथा खान–पानादि भी केवल भगवत प्राप्ति के उद्देश्य से ही किया जाय तो वह भी भजन में ही सम्मिलित हो सकती है। इनमें भी साथ–साथ भगवान् के नाम का जप और स्वरूप का ध्यान तो करते रहना ही चाहिए। इस प्रकार उद्देश्य एक बन जाने पर तो सभी कार्य भगवत प्राप्ति कराने वाले हो जाते हैं।

जैसे किसी नदी के बहुत बड़े प्रवाह को भी जब नहरे निकालकर अनेक शाखाओं के रूप में विभाजित कर दिया जाता है तब वह बहुत बड़ा प्रवाह भी अपने एकमात्र अन्तिम लक्ष्य समुद्रतक नहीं पहुँच पाता और पृथ्वी पर ही इधर–उधर बिखरकर समाप्त हो जाता है; किन्तु किसी नदी का एक साधारण प्रवाह भी यदि अपने लक्ष्य समुद्र की ओर एक ही रूप में चलता रहता है तो अन्यान्य छोटे–छोटे निर्जर आदि की अनेक शाखाओं के प्रवाह भी उसी में आकर सम्मिलित होते रहते हैं और वही बहुत बड़ा प्रवाह बनकर अपने गन्तव्य लक्ष्य समुद्रतक पहुँच जाता है।

इसी प्रकार उद्देश्य अनेक होने पर अर्थात् कोई निर्धारित लक्ष्य न होने पर या केवल लौकिक लक्ष्यहोने पर बड़े–बड़े कार्य और परिश्रम भी वास्तविक कार्य की सिद्धि नहीं कर सकते, किन्तु ध्येय एक ओर केवल पारमार्थिक होने पर साधारण–से–साधारण क्रियाएँ भी बहुत कुछ कर सकती है, अर्थात् उनसे भी भगवत्सप्राप्ति हो सकती है; क्योंकि जिसका लक्ष्य भक्त ध्रुव की तरह ध्रुव यानी अटल है, वही निर्बाधरूप से और शीघ्र सिद्धि प्राप्त कर सकता है। उसके भाग में कोई भी विघ्न–बाधाएँ नहीं आती, जो आती हैं, वे भी सहायक ही हो जाती हैं।

*Corresponding Author: डा. उर्मिला मीणा घूमना

संसार के मनुष्यों को तीन भागों में बांटा जा सकता है–द्वेष, प्रेमी और उदासीन। ध्रुवजी को उनसे द्वेष रखने वाली माता सुरूचि ने भी यही उपदेश दिया कि इस पद को प्राप्त करने के लिए तुम भगवान विष्णु की आराधना करो और उनसे प्रेम करने वाली माता सुनीति ने भी इसी का समर्थन किया तथा उदासीन श्रीनाथजी ने भी अन्त में श्रीविष्णु–भक्ति का ही उपदेश दिया कहने का अभिप्राय यह है कि जिसकी साधना, तपस्या का लक्ष्य ध्रुव है, अटल है, उसके लिये कोई बाधक नहीं; द्वेषी–प्रेमी या उदासीन सभी विभिन्न प्रकार से उसके सहायक भी बन जाते हैं।

किन्तु हिरण्यकशिपु की भाँति जिसका लक्ष्य पारमार्थिक नहीं, उसकी क्रियाएँ बलवती होने पर भी वास्तविक सिद्धि नहीं दे सकती। ब्रह्माजी ने स्वयं बतलाया कि हिरण्यकशिपु और हिरणाक्ष–जैसी तपस्या सृष्टि में अभी तक किसी ने नहीं की। हजारों वर्षों तक ऐसी कठोर तपस्या करने पर भी उनका लक्ष्य पारमार्थिक न होने से वास्तविक सिद्धि नहीं हुई। उनके विरोधी और उदासीन व्यक्तियों की तो बात ही क्या, सहायक भी छिन्न भिन्न हो गये।

अतः मनुष्य को उचित है कि अपना लक्ष्य एक परमात्मा को बनाकर सावधानी के साथ तत्परतापूर्वक यथोक्त रीति से कर्त्तव्य कर्म करता रहे। ऐसा करने पर अनायास ही परम ध्येय की सिद्धि कर सकता है। आवश्यकता है सजग रहने की सावधानी की। मनुष्य को हर समय जागरूक होकर इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि मन, इन्द्रियों और शरीर आदि की चेष्टाएँ कहीं संसार को मूल्यवान समझकर न होने लग जायें, अर्थात् संसार लक्ष्य न बन, जाय इस प्रकार हर समय एक लक्ष्यसिद्धि की जागृति बनी रहनी चाहिए।

लक्ष्य स्थिर करके चलने वाले के लिए निम्नलिखित दो बातों में से किसी एक को भलीभाँति समझ लेने और निरन्तर स्मरण रखने की तो बहुत ही आवश्यकता होती है। दोनों रहे तब तो कहना ही क्या है। एक तो यह कि हमें पहुँचना कहाँ है और दूसरी यह कि उसका मार्ग कौन–सा है। जैसे हमें किसी पहाड पर एक देवमन्दिर में जाना है तो पहले उसका दिग्दर्शन हो जाय कि कहाँ जाना है तो फिर हम उस दिशा की ओर दृष्टि करके चलते रहे अथवा मन्दिर न दिखने पर भी हमें केवल रास्ता मिल जाय। कि इस रास्ते से इस प्रकार पहाड़ पर स्थित देवमन्दिर में पहुँचा जा सकता है तो हम केवल रास्ते के आधार पर ही चल सकते हैं।

पहले लक्ष्य के स्वरूप को समझना चाहिए कि परमात्मा की प्राप्ति क्या है। भगवान ने गीता में बताया है–

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।[2]
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।।

भागवद्गीता (6/22)

अर्थात् उसकी प्राप्ति होने पर उससे बढ़कर अन्य कोई लाभ होता है ऐसी मान्यता उसके मन में रह ही नहीं सकती और उसमें स्थित हो जाने पर बडा भारी दुःख भी उसे कभी विचलित कर नहीं सकता। यानि कैसा भी कष्ट क्यों न प्राप्त हो, हमारे परम आनन्द में कमी आ ही नहीं सकती तो फिर दुःख तो वहाँ रह ही कैसे सकता है? दुःख का तो वहाँ आरम्भ ही नहीं हो सकता। क्योंकि सुख में कमी आने से ही दुःख के आने की गुंजाइश रहती है। और सुख की कभी, किंचित् भी कमी वहाँ रहती नहीं। उस स्थिति में हर समय एकरस समता बनी रहती है, राग द्वेष, हर्ष–शोक, चिन्ता–भय–उद्वेग आदि भाव अन्तःकरण में कभी हो ही नहीं सकते। कर्म, क्लेश, विकार, अज्ञान, संशय भ्रम आदि दुःख और दुःखों के कारणों का सदा के लिए विनाश हो जाता है यह है वस्तुस्थिति यही प्राप्तव्य है और यही गन्तव्य लक्ष्य है।

दूसरा मार्ग। मार्ग क्या है? हम कोई भी काम करे, वह होना चाहिए। शास्त्रविहित और हमारे लिये विशेषरूप से निर्धारित किया हुआ। उस काम को राग–द्वेष रहित होकर भगवदाज्ञा मानकर केवल भगवत्प्रीत्यर्थ भगवच्चिन्तन करते हुए निष्कामभाव से तत्परतापूर्वक करते रहें।

लक्ष्य और मार्ग स्थिर कर लेने पर भी साधक के लिये एक बहुत बडी आवश्यकता है– भगवान् पर भरोसा रखने की हृदय में ये विश्वास सुदृढ होना चाहिए कि 'मेरा वह कार्य अवश्य ही सिद्ध होगा, क्योंकि मुझ पर भगवान की बडी भारी कृपा है। भगवान के मार्ग पर चलने वाले के लिये बड़े भारी आश्वासन की बात तो यह है कि इसमें घाटा (नुकसान) तो कभी होता ही नहीं।

तुलसी सीताराम कहु दृढ राखहु विस्वास।
कबहूँ बिखरे ना सुने रामचन्द्र के दास।।

इसीलिये हमें परमात्मा की प्राप्ति के मार्ग की ओर बड़े जोरों से उत्साहपूर्वक लग जाना चाहिये क्योंकि समय है बहुत थोडा और काम है बहुत अधिक। संसार के भोगों का तो कोई अन्त ही नहीं है–

दुनियाँ के जो मजे है हरगिज भी काम न होगें।
चरचे यही रहेंगे अफसोस हम न होगे।।

*Corresponding Author: डा. उर्मिला मीणा घूमना

–तब फिर हमारा कौन होगा? अतएव–

तूर्ण यतेत न पतेदनुमृत्यु याव
न्निः श्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात्।

कल्याण के लिये अतिशीघ्र यत्न करें और मृत्युपर्यन्त कही भी मार्ग से च्युत न हो, इसके लिये सदा सावधान रहे, क्योंकि विषय–पदार्थ तो सर्वत्र ही उपलब्ध हो जाते हैं।

इस भगवद्वाक्य के अनुसार शीघ्रता करनी चाहिये, क्योंकि अन्य सब वस्तुएँ और बातें तो सभी जगह मिल जायेंगी पर भगवत्प्राप्ति का सुअवसर तो केवल इस मानव–शरीर में ही है–

श्री भर्तृहरिजी ने कहा है–

यावत् स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत क्षयो नायुषः।
आत्मश्रेयासि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्
प्रोद्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कोदृशः।।[3]

जब तक यह शरीर स्वस्थ है और तब तक वृद्धावस्था दूर है तथा जब तक इन्द्रियों की शक्ति नष्ट नहीं हुई है एवं जब तक आयु का क्षय नहीं हुआ है। तभी तक समझदार मनुष्य को आत्मकल्याण के लिये महान प्रयत्न कर लेना चाहिये; अन्यथा घर में आग लग जाने पर कुआँ खोदने के लिए परिश्रम करने से क्या लाभ?

संदर्भ सूची–

1. भागवद्गीता–6/17
2. भागवद्गीता–6/22
3. स्वामी रामसुखदास, जीवन का कर्त्तव्य, प्रकाशक–गोविन्द भवन कार्यालय, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं. 2055–बीसवा संस्करण, पृ. संख्या 8

*Corresponding Author: डा. उर्मिला मीणा घूमना